उपदेशामृत

—सुधाकर

२

शारदा मंदिर

उपदेशामृत

(दूसरा भाग)

स्व० प्रो० सुधाकर एम० ए०

शारदा मन्दिर
नई सड़क,
दिल्ली-६

दसवाँ संस्करण] सं० २०२१ वि० [मूल्य ७५ पै.

प्रकाशक—

शारदा मन्दिर,

नई सड़क, दिल्ली ६

हिन्द कम्पोज़िंग एजेन्सी
द्वारा
महेन्द्र आर्ट प्रेस, बाजार सीताराम,
दिल्ली-६ में मुद्रित

वक्तव्य

उपदेशामृत के चारों भागों में बच्चों को वेद की शिक्षा के निकट लाने की कोशिश की गयी है, ताकि उनमें सदाचार, सच्चरित्रता की नींव दृढ़ हो। इस निमित्त वेदमन्त्र अथवा उनके अंश देकर बच्चों का ध्यान उन आदर्शों की ओर खींचा गया है, जो उनको उभारने वाले तथा उन्नत करने वाले हैं।

धार्मिक शिक्षा तभी सफल हो सकती है, जब उसका ध्येय बच्चों को उत्तम नागरिक अथवा मनुष्य-समाज का उपयोगी सदस्य बनाना हो। इसी ध्येय को सामने रखकर 'उपदेशामृत' के चार भाग लिखे गये हैं।

'उपदेशामृत' का यह (अब दसवां) संस्करण है। पहले संस्करणों को आर्य जनता ने बहुत पसन्द किया है। अतः इस संस्करण में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

—सुधाकर

अध्यापकों के प्रति

धार्मिक शिक्षा के प्रति बच्चों की उदासीनता का मुख्य कारण यह होता है कि हम धर्म के मौखिक शिक्षण पर अधिक बल देते हैं, परन्तु धर्म का जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। जब हम बच्चों को धार्मिक शिक्षा देते हैं, तब वे हमारे जीवन की ओर देखते हैं। जो कुछ हम उनको पढ़ाते हैं, उनको वे हमारे जीवन में घटा हुआ देखना चाहते हैं। अतः धर्म की शिक्षा देने वाले अध्यापकवर्ग की बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है।

धर्म की मौखिक-शिक्षा देते समय आप अपने जीवन को उसका प्रमाण बनाइये, ताकि जो कुछ आप पढ़ाएं उसका समर्थन आपके अपने जीवन से होता रहे। इस प्रकार पढ़ाया हुआ पाठ विद्यार्थियों के जीवन को उन्नत करने वाला सिद्ध होगा।

उपदेशामृत में इस बात का भी पूरा ध्यान रक्खा है कि प्रतिपादित शिक्षा की शैली से बालकों में स्वयं विचार करने की शक्ति पैदा हो और वे "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" के महत्व को समझें।

—लेखक

उपदेशामृत

२

विषय-सूची

—:o:—

उपदेशामृत

[२]

ईश्वर-स्तुति

सूर्य चन्द्र नक्षत्र बनाये. बिना सहारे के लटकाये।
सबको अचरज में डाला है, बड़ा चतुर रचने वाला है।
पृथ्वी कैसी गोल बनाई, जो चपटी देती दिखलाई।
जिसने देखी यह चतुराई, किसकी बुद्धि नहीं चकराई ?
चींटी से लेकर हाथी तक,जन्तु अजब सब,किसको है शक?
क्या ही अद्‌भुत कारीगर है,रखता जो हर तरफ नज़र है।
हरे-भरे हरदम मन-भाते, फूले-फले पेड़ लहराते।
सभी जगह है उसकी सत्ता, साक्षी इसका पत्ता-पत्ता।

* * *

पहला उपदेश

किं लौक्यमिति ? ब्रह्मचर्यमेवेति ।

लोगों का हित किस में है ? ब्रह्मचर्य में ही लोगों का सच्चा हित है

बालको ! तुम ब्रह्मचारी कहलाते हो । क्या तुमने कभीं सोचा है कि इस शब्द के क्या अर्थ है ? ब्रह्मचारी का अर्थ केवल विद्यार्थी ही नहीं क्योंकि विद्या को प्राप्त करने वाले को विद्यार्थी कहते हैं, परन्तु ब्रह्मचारी मन, शरीर और आत्मा तीनों की शक्तियों को प्राप्त करता है । ब्रह्मचारी शब्द के समान अर्थ वाला कोई दूसरा शब्द दूसरी भाषाओं में नहीं मिलता ।

ब्रह्मचारी की आशाएँ बहुत ऊँची होती हैं । उसका हृदय विशाल होता है । वह मन, शरीर और आत्मा की शक्तियों को बढ़ाता हुआ परमात्मा तक पहुँचने की कोशिश करता है । ब्रह्मचारी का सदाचारी होना अत्यावश्यक है । सदाचार के बिना कोई बालक ब्रह्मचारी नहीं कहला सकता । ब्रह्मचारो सदा मन और

इन्द्रियों को वश में रखता है। उसका जीवन सादा और विचार ऊँचे होते हैं। शरीर को व्यायाम द्वारा खूब पुष्ट बनाता है। मन को पवित्र और बुद्धि को उज्ज्वल रखता है। उसके चेहरे पर सदा तेज रहता है। उसका हृदय सेवा और सहायता के भावों से भरा रहता है। उसकी दृष्टि में जाति-पांति, मत-मतान्तरों के भेद नहीं रहते। वह सब मनुष्यों को समान रूप से प्रेम करता है और सबको आदर और सत्कार का पात्र समझता है। स्वामी दयानन्द इसी प्रकार के ब्रह्मचारी थे। तुम सब भी ऐसे ब्रह्मचारी बन कर दिखाओ।

* * *

दूसरा उपदेश

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा

हे अमृतस्वरूप परमात्मन् ! आप जगत् का
विस्तार करने वाले हैं ।

ये सूर्य, चन्द्र और तारागण जो कुछ भी दिखाई देते हैं सब उसी प्रभु की महानता को प्रकट कर रहे हैं । जगत् के इस महान् विस्तार से ही इस जगत् के रचनेवाले की महान् सत्ता का अनुभव होता रहता है । इस हमारी पृथ्वी पर अनेक वर्षों से लोग बसते हैं, फिर भी पृथ्वी का हर एक भाग किसी ने भी नहीं देखा । हिमालय पर्वत की समस्त चोटियां भी अभी तक नहीं देखी जा सकीं तो सारे ब्रह्माण्ड को कौन जान सकता है ?

जिस प्रकार उस परब्रह्म की महान् सत्ता चारों ओर फैल रही है, उसी प्रकार तुम भी अपने शुभ कर्मों का विस्तार कर सकते हो । देखो, तुम एक छोटे से बीज को बोते हो, उससे एक महान् वृक्ष उत्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार तुम्हारा छोटे से छोटा शुभ कर्म भी संसार में महान् शुभ फल ला सकता है ।

जब तुम किसी व्यक्ति की सहायता करते हो, तो उसके अन्दर भी सहायता के भाव जागृत होते हैं। इस प्रकार आपस में एक दूसरे की सहायता से मनुष्य समाज का कल्याण होता है। तुम किसी डूबते को बचाते हो, वह भी सदा ख्याल रखेगा कि मुसीबत पड़ने पर दूसरों को सहारा देना चाहिए। तुम किसी भूखे को अन्न देते हो। वह दूसरे भूखे को देखकर तरस करेगा। तुम खेलते हो और प्रसन्न होते हो। इस प्रकार अपनें खेल में दूसरों को शामिल करो ताकि वे भी तुम्हारे साथ खेल का आनन्द उठावें। इस तरह आपस में सहायता करने से तुम्हारे शुभ कर्मों का विस्तार होगा और जगत् में सुख की वृद्धि होगी।

प्रभु जब जगत् का विस्तार करने वाले हैं तो हमको भी जगत् का विस्तार करना चाहिए। अपने शुभ कम का विस्तार करो। अपने चहुँ ओर सुख-सम्पत्ति का विस्तार करो। सेवा और सहायता द्वारा अपने और दूसरों के लाभों को सदा बढ़ाते चले जाओ, ताकि संसार में तुम्हारा नाम और यश कायम रहे।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

हे अमृतस्वरूप परमात्मन् ! तू जगत् का धारण करने वाला है ।

परब्रह्म परमेश्वर ने जगत् का केवल विस्तार ही नहीं किया, उसे धारण भी कर रखा है । किसी वस्तु के विस्तार करने में जहां महानता प्रकट होती है वहाँ उसके धारण करने में शक्ति का भी पता लगता है । प्रभु ने इस जगत् को रचकर अगर इसे धारण न किया होता तो आज सूर्य अपने नियम में न चलता । चन्द्र अपनी गति को छोड़ बैठता । तारागण दिन के समय न तो लोप हुआ करते, न रात को प्रकट हो सकते । किसी वस्तु का नियम में होना आवश्यक न होता ।

देखो, इस संसार में ऐसे कितने ही कीट-पतंग जन्म लेते हैं, जो अपनी जाति को जन्म देकर धारण नहीं कर सकते । इसलिए ये जन्म पाकर प्रायः धड़ा-धड़ा मृत्यु के मुख में जाते हैं ।

तुम मनुष्य हो। परमात्मा ने मनुष्य को सब प्राणियों से ऊँचा बनाया है। मनुष्य के अन्दर नाना प्रकार के गुण हैं। उनके अन्दर कई प्रकार की शक्तियां हैं। उन शक्तियों को काम में लाओ और उनको धारण करो। फिर तुम संसार में सम्पत्तिशाली हो जाओगे। पर उस सम्पत्ति का धारण करना भी सीखो, अर्थात् उसका ऐसा अच्छा उपयोग करो कि तुम्हारी सम्पत्ति वैसी की वैसी बनी रहे। अगर तुम अपने कुकर्मों से अपनी सम्पत्ति या ऐश्वर्य को कम कर दोगे तो इसके ये अर्थ होंगे कि तुम्हारे अन्दर धारण करने की शक्ति नहीं।

धारण शक्ति से एक और गुण की वृद्धि होती है, अर्थात् सब प्रकार की वस्तुओं को हम ठीक व्यवस्था में रख सकते हैं। इसलिए वेद के शब्दों में जहां तुम अपने गुणों और शुभ कर्मों का विस्तार करो, वहां उनको सदा धारण भी करते रहो।

गुणों के धारण करने का अर्थ यह है कि हम उनको अपने जीवन में स्थान दें, अपने जीवन में प्रकट करें। तभी उन गुणों से हमें लाभ हो सकता है, तभी उन

गुणों से हमारा जीवन ऊँचा उठ सकता है। हमारा धर्म भी गुणों के धारण करने का नाम है। केवल अच्छे गुणों के बखान करने से कुछ न बनेगा। उनके धारण करने में ही जीवन की सफलता होगी।

"धारणाद् धर्म इत्याहुः" ऐसा शास्त्र में कहा गया है।

* * *

चौथा उपदेश

ओ३म् सत्यं यशःश्रीर्मयि श्रीःश्रयतां स्वाहा

हे परमेश्वर ! सत्य कर्म, यश, धन और ऐश्वर्य
मुझ में विराजमान हों ।

शक्तिशाली होने के लिए जिन-जिन चीज़ों की आवश्यकता है उनका वेद ने सुन्दर रीति से वर्णन किया है । सबसे पहले सत्य का वर्णन है । अपने जीवन में सत्य कर्मों का अनुसरण करो । सत्य में बड़ा बल है । भगवान् स्वयं सत्य-स्वरूप हैं । सत्य के सहारे ही सारा संसार चल रहा है । इसीलिए कभी सत्य का सहारा न छोड़ो ।

जब सत्य प्राप्त कर लोगे तो यश को अवश्य प्राप्त कर सकोगे । सत्य के आधार पर प्राप्त किया हुआ यश देर तक टिकने वाला होगा । देखो, महापुरुषों के यश का गान प्रत्येक देश में होता है, पर चोर डाकू के नाम का कीर्तन कहीं नहीं होता । श्रीराम को आज कौन याद नहीं करता ? पर रावण की सभी निन्दा करते हैं ।

यश होगा तो धन की कमी नहीं होगी । यश के

प्राप्त होने पर धन और ऐश्वर्य स्वयमेव आ जाते हैं। यशस्वी मनुष्य ऐश्वर्य का अधिकारी हो जाता है। जो सत्यवान् है उसके सामने ऐश्वर्य हाथ बाँधे खड़ा रहता है। जैसे सत्य-स्वरूप परब्रह्म के धन और ऐश्वर्य का कोई अन्त नहीं उसी प्रकार जो परब्रह्म के उपदेश के अनुसार सत्य को धारण करके यश और ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, वह भी इन चीज़ों से भरपूर रहता है।

जो मनुष्य सत्य पर चलकर दूसरे मनुष्यों के काम आता है उसका यश चारों ओर फैल जाता है। भगवान् कृष्ण सदा सत्य का पक्ष लेते रहे। आज तक उनका यश गाया जाता है। क्रूर कंस का नाम आज भी कलंकित हैं।

जो बालक या बालिकायें संसार में ऊँचा उठना चाहें, जिनको यश की अभिलाषा हो, जो धन और ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहें, उन्हें सत्य-स्वरूप परमात्मा से सत्य को प्राप्त करना चाहिए। सत्य का दर्जा पहला है। इसके पश्चात् यश और उसके पीछे धन। इसके क्रम के अनुसार ही वेद ने हमें उपदेश दिया है कि सत्य कर्म, यश और धन को प्राप्त करो। याद रक्खो इस क्रम से धन का तीसरा दर्जा है और सत्य का पहला।

प्रभु का ध्यान

अब कैसे छूटे नाम रट लगी ?
प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी।
जाकी अँग-अँग बास समानी।
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा।
जैसे चितवत चन्द चकोरा।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती।
जाकी जोति बरै दिन-राती।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा।
जैसे सोनहि मिलत सुहागा।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा।

* * *

प्रार्थना

(वेदमन्त्रों के आधार पर)

हे अग्ने ! हमें धन-धान्य की प्राप्ति के लिए अच्छे मार्ग से चला। तू हमारे सब कर्मों को जानता है। हमसे कुटिल पापों को छुड़ा। हम तेरे चरणों में बार बार नमस्कार करते हैं।

हे महाराजाधिराज ! हमारे परिवार के मनुष्यों को स्वस्थ और सुखी रखो। हमें गौओं, घोड़ों और दूसरे प्राणियों से सुख पहुँचे। हमें औषधियों से कल्याण प्राप्त हो।

हे भगवन् ! मेरा मन दिव्य-गुण-युक्त हो, शुभ कल्याणकारक विचारों वाला हो। मेरा मन मुझे अच्छे कर्मों की प्रेरणा करे। मैं वीर पुरुषों के पीछे चलने वाला बनूं। मैं अपने जीवन को यज्ञ का स्वरूप दूँ।

हे कृपा सागर ! जैसे अच्छा सारथी रास के द्वारा घोड़ों को चलाता है, वैसे ही मेरा मन इन्द्रियों का निग्रह

करने वाला हो और शुभ कल्याण कारक कर्मों में लगाने वाला हो।

हे अभयदाता भगवन्! हमें मित्रों से अभय कर, शत्रुओं से अभय कर, जाने हुओं से अभय कर, न जानें हुओं से अभय कर। रात से अभय कर, दिनसे अभय कर। सारी दिशाएँ हमारी मित्र हों।

* * *

पांचवां उपदेश

ओ३म् वाङ्मआस्येऽस्तु

'हे परमेश्वर ! मीठी वाणी मेरे मुख में रहे।'

बुद्धिमान मनुष्य कहा करते हैं कि बोलने के पहले सोच लेना चाहिए, क्योंकि जो वाक्य मुख से बाहर निकल जाता है वह फिर मुख में वापिस नहीं जा सकता। जो तीर कमान से छूट जाता है, वह छूट ही जाता है। लौट कर नहीं आता। इसलिए जब बोलो विचार कर बोलो। इसी मुख से तुम मीठी वाणी बोल सकते हो, इसी से कड़वे शब्दों को भी बोल सकते हो।

सब लोग कोयल की बोली पसन्द करते हैं, परन्तु कौआ बोलता हो तो वह किसी को नहीं भाता। जो बालक मीठा बोलते हैं उन से सब लोग प्रेम करते हैं कहते हैं, तलवार का घाव भर जाता है, पर वाणी का घाव कभी नहीं भरता, हर समय ताजा रहता है

अपने मुख को निरोग रक्खो, अपनी जिह्वा का सदा ध्यान रक्खो। कई रोग ऐसे होते हैं जिसमें मुख

और जिह्वा फंस जाते हैं तो वाणी भी खराब हो जाती है। कई बच्चे शुरू में कुछ हकलाया करने हैं, दूसरे उनको चिढ़ाया करते हैं, और स्वयं उनका स्वांग भरा करते हैं. इसका परिणाम यह होता है कि वे भी उसी रोग में फंस जाते हैं। इस स्वभाव से सदा बचना चहिये।

बालको, तुम जिसको मीठा बोलता देखो, उसी की नकल उतारा करो। जिनकी जीभ में रस होता है उनके पास जाकर बोलना सीखो। अपनी जीभ से कभीं निराशा के वचन मत बोलो। सदा उत्साह और वीरता के वचन बोलो। किसी गिरे हुए को जब उठाते हैं तो कहा जाता है कि उठो, वीर बनो। किसी रोगी को पीड़ा में रुदन करते हुए देखते हैं तो कहते हैं तुम अभी ठीक हो जाओगे। इस पीड़ा की अवधि समाप्त होने वाली है। पर अगर गिरे हुए को कहा जावे, तुम उठ नहीं सकते, और रोगी को कहा जावे तुम बच नहीं सकते, तो उन्हें कितना दुःख पहुँचेगा ? उनकी हिम्मत टूट जायेगी और उनका दिल बैठ जायेगा। इसलिए वाणी का सदा अच्छा प्रयोग करो।

मीठी वाणी बोलो। उभरने वाली, उठाने वाली, जीवन देने वाली, हंसने वाली और उत्साहित करने वाली वाणी बोलो। वाणी की शक्ति असीम है। जिन लोगों ने वाणी की शक्ति को अनुभव कर लिया है वे सच्चे महात्मा बन जाते हैं। महात्मा गाँधी के लेखों को पढ़ो। तुम्हें वाणी का महत्व मालूम हो जायेगा।

* * *

प्रार्थना

(वेद मन्त्रों के आधार पर)

हे भगवान् ! हमें दुर्बुद्धि और भिक्षावृत्ति से बचा । तू हमारा रक्षक है । अपने पवित्र ज्ञान से हमें भरपूर कर दो । हमें सदा सन्मार्ग पर चलाते रहो ।

हे अग्ने ! हमारे कुटुम्ब कबीले, हमारे मित्र और सम्बन्धी सब सुखी हों । तुझे विद्वान लोग भक्ति से प्रसन्न करते हैं । हमारी वाणी भी तेरे यश का विस्तार करने वाली हो ।

हे भगवन् ! लोग आप को अनेक नामों से पुकारते हैं । आप अग्नि, इन्द्र और मित्र हैं । आप वरुण, पूषा और वृहस्पति हैं । आप वायु, साम और रुद्र हैं ।

हे कृपानिधे ! जिस नाम से भक्ति पूर्वक हम आप को बुलाते हैं, आप हमारी याचना को सुनते हैं । आपके दान के द्वार सदा हमारे लिए खुले हैं । हमें बहुत सो गायें और घोड़े दो । हम वीर और श्रेष्ठ पौरुष वाले हों ।

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्वषावहै ।

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।

हे परमेश्वर ! मेरे दोनों नथनों में श्वास शक्ति रहे ।

जीवन के लिये श्वास परमावश्यक है। श्वास दोनों नथनों से लिया जाता है। दोनों नथनों का स्वस्थ रखना अत्यन्त आवश्यक है। नासिका के स्वस्थ न रहने से श्वासों की गति मुख की ओर हो जाती है, जिस से स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है।

बालक बालिकाओं को खेल बहुत प्यारा होता है। खेलते हुए यदि उनको नाक साफ़ करने की आवश्यकता हो तो नाक साफ़ करने की बजाय वे ऊपर चढ़ा जाते हैं। कभी-कभी पढ़ते हुए भी वे ऐसा करते रहते हैं। इस प्रकार लगातार आलस्य करने से उनकी यह आदत ही पड़ जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी नाक बन्द हो जाती है।

कुछ बालक बचपन से खटाई, मिर्च, तेल खाना बहुत पसन्द करते हैं और मर्यादा से ज़्यादा खाते रहते

हैं, जिससे उनको ज़ुकाम हो जाता है और ज़ुकाम से भी नासिका बन्द हो जाती है।

नासिका जब बन्द हो जाती है तब गन्ध मालूम करने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है। फिर मनुष्य के पास यदि दुर्गन्ध भी हो तो उसे मालूम नहीं पड़ता, परन्तु दुर्गन्ध के परमाणु अन्दर जाने से शरीर में कई प्रकार के रोग हो जाते हैं।

नासिका बन्द हो जाने से जब श्वास की गति मुख की ओर होती है तब छाती के रोग शीघ्रता से उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि नथनों द्वारा बहुत सर्दी में लिया हुआ श्वास भी उतना ही गरम हो जाता है जितना शरीर के लिए आवश्यक है, परन्तु मुख द्वारा गया हुआ श्वास सीधा छाती में जाकर लगता है और निमोनिया आदि रोग शीघ्रता से हो जाते हैं।

इसलिए बालको! सदा सावधान होकर अपनी नासिका के द्वारों को स्वस्थ रखने का प्रयत्न करो।

साथ ही साथ प्राणायाम की आदत डालो। खूब गहरे श्वास लिया करो। किसी स्वच्छ स्थान में अथवा

बगीचे में जाकर खूब गहरे श्वास लो। इससे तुम्हारे श्वास की गति सुधरेगी और तुम्हारा रक्त शुद्ध होकर तुम्हें उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होगा।

श्वासों की गति-विधि को ठीक रखने के लिये प्रतिदिन का व्यायाम भी अत्यन्त आवश्यक है।

* * *

शिव संकल्प

टेक—चिदानन्द सानन्द सेवा करेंगे ।
प्रभो पुण्यपथ से न टारे टरेंगे ॥ चिदा० ॥१॥

खलों को सदा हम सदुपदेश देंगे ।
कभी भी किसी को न हम क्लेश देंगे ।
भलाई के भण्डार भारी भरेंगे ॥ चिदा० ॥२॥

भ्रमे हैं, उन्हें धर्म-नौका दिखाकर ।
उतारेंगे भव-पार भक्ति सिखाकर ।
तरायेंगे औरों को हम फिर तरेंगे ॥ चिदा० ॥३॥

प्रसारेंगे सद्धर्म संसार भर में ।
भले भक्त पावेंगे प्रत्येक घर में ।
दुखी दीन दलितों का दुखड़ा हरेंगे ॥चिदा०॥४॥

खड़ा छीनने धर्म जल्लाद होगा ।
हमारा हृदय बाल प्रह्लाद होगा ।
धरे धीरता धर्म पर हम मरेंगे ॥ चिदा० ॥५॥

सदाचार सेवा सुकर्मी बनेंगे ।
नहीं प्राण रहते विधर्मी बनेंगें ।
सबल संकटों से न किञ्चित् डरेंगें ॥चिदा०॥६॥

बसें पूर्व पश्चिम किसी भी दिशा में।
उषाकाल सायं दिवा वा निशा में।
अचल हो विमल ध्यान तेरा धरेंगे ॥चिदा०॥७॥

* * *

सातवां उपदेश

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षु रस्तु ।

हे परमेश्वर ! मेरी दोनों आँखों में उत्तम दृष्टि रहे ।

बालको ! कभी तुमने सोचा है कि जीवन के लिये आंखें कितने काम की हैं । प्रातःकाल वन, पर्वत, नदी नाले और रंग रंग के फूल इन्ही आँखों से देखते हो और आनन्द उठाते हो । आँखों का जीवन में क्या मूल्य है ? इस पर थोड़ी देर के लिये विचार करो ।

आँखों से तुम रूप-कुरूप में पहचान करते हो । खेल तमाशा देखते हो । पुस्तकें पढ़ते हो और जहां चाहो बेखटके भाग जाते हो । ये सब आँखों के द्वारा हो कर सकते हो । इसलिए आँखों को ठीक अवस्था में रखना बड़ा ज़रूरी है ।

प्राय: बालक आंखों को स्वस्थ दशा में रखने की परवाह नहीं करते । धूप में बहुत ज़्यादा घूमा करते हैं । दिन भर कड़कती धूप में पतंग उड़ाया करते हैं ।

इन बातों से आँखें खराब हो जाती हैं और दृष्टि को हानि पहुँचती है।

गर्दे से भी आँखों को हानि पहुँचती है। गर्द का बारीक से बारीक परमाणु आँखों में प्रवेश करके रगड़ पैदा करता है। रगड़ से आँखें दुखने लग जाती हैं। आँखें बहुत नाज़ुक अंग हैं।

धुएँ के परमाणु भी आँखों को लाल कर देते हैं। इसलिए धूप, धुआँ और धूल (गर्द) से सदा अपनी आंखों की रक्षा करो।

चलते चलते पढ़ने, लेटकर पढ़ने, धीमी रोशनी में पढ़ने, बहुत बारीक अक्षरों के पढ़ने और पुस्तक के पास आँखें लगाकर पढ़ने से आँखें खराब हो जाती हैं।

जब आँखों से किसी प्रकार भी पानी आने लगें या गीद लगने लगे तो समझ लो कि आंखों में कुछ रोग हो गया है। तुरन्त डाक्टर के पास जाओ और इलाज कराओ। किसी अनाड़ी की दवाई कभी आंखों में मत डालो।

इसलिए बालको! सदा अपनी आँखों की रक्षा

करो। जब आंखें इतनी उपयोगी वस्तु हैं तो उनसे सदा उत्तम काम लेना चाहिए। आँखों से बुरे दृश्य मत देखो, बुरी तस्वीरें मत देखो, ताकि तुम्हारे ब्रह्मचर्य को हानि न पहुंचे।

आँखों को सदा अपने वश में रखो। उनको सदा अपना सहायक बनाओ। बहुत से लोगों के हृदय में पाप उनकी आँखों के द्वारा प्रवेश करता है। तुम सदा इस बात का ध्यान रखो कि तुम्हारी आँखें सदा तुम को भलाई की ओर ले जावें।

* * *

नर हो, न निराश करो मन को

(१)

कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रहकर कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,
समझो जिस में यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

(२)

निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी, पर नाम रहे,
मरणोत्तर गुन्जित गान रहे।
कुछ हो, न तजो निज साधन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

(३)

प्रभु ने तुमको कर दान किये,
सब वांछित वस्तु विधान किये।

तुम प्राप्त करो उसको न अहो ?
फिर है किस का यह दोष कहो ?
समझो न अलभ्य किसी धन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

(४)

किस गौरव के तुम योग्य नहीं ?
कब कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं ?
जन हो तुम भी जगदीश्वर के,
सब हैं जिस के अपने घर के।
फिर दुर्लभ क्या उसके जन को ?
नर हो, न निराश करो मन को।

(५)

करके विधिवाद न खेद करो,
निज लक्ष्य निरन्तर वेध करो।
बनता बस उद्यम ही विधि है,
मिलता जिस से सुख का निधि है।
समझो धिक् निष्क्रिय जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतँ समाः ।"
कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने का उद्योग करो ।।

आठवाँ उपदेश

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।

'हे परमेश्वर ! मेरे दोनों कानों से श्रवण शक्ति रहे ।'

जिस बालक के जन्म से कान बहरे होते हैं, वह मुख से बोलना नहीं सीख सकता, क्योंकि सुनकर ही बोलने का ढंग आ सकता है। जो न सुन सकता है, न बोल सकता है, वह जीवन यात्रा का कुछ भी आनन्द नहीं उठा सकता। कुछ लोग दूसरे कई कारणों से बहरे हो जाते हैं। वह भी बहुत दुःखी रहते हैं, क्योंकि जो सुन नहीं सकता वह संसार में कई बातों से वंचित रहता है। वह संसार में अपने आप को अकेला पाता है। घर में लोग बातें करते हैं, उसे कुछ पता नहीं लगता कि क्या कह रहे हैं। बड़े-बड़े सुन्दर व्याख्यानों से वह लाभ नहीं उठा सकता। बड़े-बड़े विद्वानों की पवित्र वाणी से उसका तनिक भी कल्याण नहीं होता मधुर गान उसको प्रसन्न नहीं कर सकते। सारांश यह

कि वह संसार के एक विशेष सुख से वंचित रहता है।

बालको ! कानों की सदा रक्षा करो। कानों में तिनका, पेन्सिल का सिरा या होल्डर की तीखी नोक आदि कभी मत फेरो, इससे कान का परदा फट जाता है। कानों से मैल निकलवाना भी हानिकारक है। कानों के डाक्टर कहते हैं कि सुनने के परदे के लिए मैल उतना ही आवश्यक है जितना तबले पर कालिख या आटा। जिस प्रकार तबला इन चीज़ों के बिना ठीक प्रकार से शब्द नहीं देता है उसी प्रकार मैल के परदे से हट जाने से उसमें सुनने की शक्ति नहीं रहती। अनावश्यक मैल कभी-कभी कानों में तेल डालने से स्वयं ही बाहर आ जाता है। उसे कुरेदने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

बालको ! कानों से सदा भली-भाँति सुना करो। गन्दे राग, गाली-गलौच और निन्दा की बातों से सदा अपनी श्रवण-शक्ति को बचाये रक्खो और हर प्रकार की हानि से अपने कानों की रक्षा करते रहो।

याद रक्खो, यदि कानों की इस प्रकार रक्षा करोगे जिस प्रकार ऊपर बताया गया है तो बूढ़े हो जाने पर भी तुम्हारी श्रवण-शक्ति बराबर बनी रहेगी और तुम सदा इसका सुख उपभोग करते रहोगे।

*　　*　　*

नवां उपदेश

ओ३म् बाह्वो में बलमस्तु।

'हे परमेश्वर! मेरी दोनों भुजाओं में बल रहे।'

भुज-बल से ही सारा शरीर सुरक्षित रह सकता है। देखो जब शरीर में पीड़ा होती है तो भुजाओं को फैलाकर ही हाथों से थामते हैं। जब सिर पर कोई प्रहार होता है तो भुजाओं से ही रक्षा की जाती है। सारे शरीर में जहाँ-कहीं दुःख होता है तो उसे भुजाओं के द्वारा दूर किया जाता है। सारे शरीर में जब कहीं पर भी बाहर से प्रहार का भय होता है तो भुजाएँ ही रक्षा करती हैं।

बालको! अपने भुज-बल को बढ़ाओ। भुज-बल से केवल अपने शरीर की रक्षा ही नहीं करते अपितु अपने परिवार की रक्षा भी करते हैं। बाहु-बल वाले बालक ही राष्ट्र में वीर पुरुष कहलाते हैं।

नाना प्रकार के व्यायाम द्वारा अपने भुज-बल को बढ़ाओ। दुर्बल भुजाओं के लिये संसार में कोई स्थान

नहीं है । दुर्बल भुजाओं वाला व्यक्ति सदा दीनावस्था में रहता है ।

बालिकायें व्यायाम से वंचित रहती हैं इसलिए दुर्बल रहती हैं, दूसरों के आक्रमण से सदा भयभीत रहती हैं । परन्तु अब देश-देशान्तरों में स्त्रियाँ और बालिकायें भी व्यायाम करने लगी हैं और किसी प्रकार का भय मन में नहीं रखतीं । वे निर्भय होकर विचरती हैं । इसलिए बालको और बालिकाओं ! तुम लोग व्यायाम द्वारा अपने भुज-बल को बढ़ाओ और संसार में जीवन का सच्चा सुख भोगो । भुजाओं का बल बाल्यावस्था से ही बढ़ना शुरू होता है । जो बचपन में इसकी ओर ध्यान नहीं देते वे बूढ़े होकर भी दुर्बल रहते हैं ।

बालको ! तुम्हारे लिए यही समय है जब कि तुम अपने भुज-बल को बढ़ा सकते हो । भुज-बल को प्राप्त करके उसे अपनी तथा दूसरों की सहायता में लगाओ । तुम्हारी जाति इस समय तुम्हारे भुज-बल की प्रतीक्षा कर रही है । निर्बल जातियाँ संसार से

मिट जाती है। उन्हें कोई आदर की दृष्टि से नहीं देखता। यदि तुम अपना, अपने देश का तथा अपनी जाति का आदर संसार में देखना चाहते हो तो अपनी भुजाओं को शक्तिशाली बनाओ।

* * *

प्रार्थना

(वेदमन्त्रों के आधार पर)

हे नायक ! आप ही हमारे नेता बनो। सब विद्वान आपकी स्तुति-प्रार्थना करते हैं। आप इस संसार में हमारे अग्रणी हैं।

हे अग्ने ! हमें पापों से और शत्रुओं से बचा। हमारे जीवन को दीर्घ बना। हमें द्युलोक और पृथ्वी से सुख प्राप्त हो।

हे देव ! हमें यज्ञकर्म करने के लिये पूरी आयु दे। हम तेरे ज्ञान का सेवन करें और अद्भुत कर्म करने वाले बनें। अपनी कृपा सदैव हम पर बनाये रक्खो।

हे अग्ने ! तू हमारा रक्षक और बचाने वाला हो, हमें आयु का और बल-वीर्य का देने वाला हो। तू हमारी श्रद्धा-भक्ति को स्वीकार कर और हमारे शरीरों की निरन्तर रक्षा कर।

हे प्रभो ! तू सब कुछ देखने और सुनने वाला

है। हम तुझ से याचना करते हैं कि अपनी ताड़न करने वाली शक्ति से हमारे शत्रुओं को हम से दूर रख कर हमें अन्न और पशु दे। हमें बल, बुद्धि और धन की कमी न रहे।

* * *

दसवां उपदेश

ओ३म् ऊर्वो में ओजोऽस्तु

'हे परमेश्वर ! मेरी दोनों जंघाओं में सामर्थ्य रहे ।'

हमारे शरीर को इधर उधर ले चलने वाली जंघाएँ ही हैं । जंघाओं में जितना बल होगा उतना ही शरीर इनसे काम ले सकेगा । जंघाओं की निर्बलता से हमारे बड़े बड़े शुभ संकल्प मन के मन ही में रह जाते हैं ।

आलस और प्रमाद दोनों अवगुण जंघाओं को निर्बल कर देते हैं । जो बालक भ्रमण के लिये बाहर नहीं जाते, भाग-दौड़ में हिस्सा नहीं लेते, उत्साही बालकों के साथ तरह-तरह के खेल नहीं खेलते और घरों में पड़े रहते हैं, उनकी जंघाओं में बल नहीं आ सकता ।

जिनकी जंघाओं में बल नहीं है, वे घर से निकलते ही सवारी की चिन्ता में पड़ जाते हैं । उनके लिये गाड़ी हो या मोटर, कोई चीज़ हो अवश्य, परन्तु जिनको व्यायाम में प्रीति है, जो खेल कूद में खुशी मनाया करते हैं, जो अपने शारीरिक बल को बढ़ाने में

तत्पर रहते हैं, जो संसार के सुखों का पूर्णतया उपभोग करना चाहते हैं, जो अपने जीवन की दौड़ में किसी से पीछे नहीं रहना चाहते, वे स्वतन्त्रता से अपनी टाँगों पर खड़ा होना सीखते हैं और अपनी जंघाओं को बलहीन नहीं होने देते। वे सदा ऐसे साधनों का प्रयोग करते रहते हैं जिन से उनकी जंघाओं में बल की बृद्धि होती रहे।

बालको! अगर तुम घर से बाहर निकल कर प्रकृति के दृश्य देखना चाहते हो, अगर तुम कूप-मण्डूक नहीं बनना चाहते, अगर तुम जीवन का सच्चा लाभ उठाना चाहते हो तो अपनी जंघाओं को बलवती बनाओ। अपने सब कामों से निवृत्त होकर खेल के समय खूब दिल खोल कर खेलो और व्यायाम करो। भुजबल भी तभी काम आ सकता है जब जंघाओं में बल हो। जिसकी भुजाएँ और जंघायें दोनों पुष्ट होती हैं उसका शरीर सुन्दर और दर्शनीय होता है, उसी के हृदय में उल्लास और साहस सदा भरा रहता है।

साहस से संसार में, होते हैं सब काम।
साहसहीन मनुष्य है होता निपट निकाम॥

* * *

ग्यारहवाँ उपदेश

ओ३म् अरिष्टानि मेऽगांनि तनूस्तन्वा मे सह सन्त ।

हे परमेश्वर ! मेरे सब अंग रोग रहित हों और
मेरी शारीरिक शक्तियाँ बढ़ती चली जावें ।'

अगर मनुष्य अपने सारे अङ्गों का, जैसा कि पहले वर्णन हो चुका है, पूरा-पूरा ध्यान रखे तो उस के सारे अंग स्वस्थ रह सकते हैं। रोग उसके पास नहीं फटक सकते और वह आरोग्यता का सुख भोग सकता है।

बालको ! तुम अपने रहने के कमरे को कैसा सुसज्जित रखते हो। उसमें ज़रा सी भी गन्दगी नहीं देखना चाहते। उसे अपने हाथ से साफ़-सुथरा रखते हो और साफ़-सुथरा रखने में ही आनन्द मानते हो।

तुम्हारे अध्यापक भी पाठशाला में स्वच्छता चाहते हैं। कभी उसमें गन्दगी नहीं देखना चाहते। तुम्हारे माता-पिता जब कोई भवन बनवाते हैं तो कहते

हैं कि इसे सुदृढ़ बनाना है। उसके लिये ढूंढ-ढूंढ कर मसाला लाते हैं।

इसी प्रकार परमात्मा की कृपा से तुमको जो यह शरीर-मन्दिर मिला है, इसका भी उसी प्रकार ध्यान रक्खो। इसे सदा साफ़-सुथरा रक्खो। एक-एक अङ्ग का पृथक्-पृथक् व्यायाम करके उसे सुदृढ़ बनाओ।

यह समय तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग की वृद्धि का समय है। इस समय में तुमको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम सब प्रकार की उलझनों से मुक्त रहो। केवल तुमको अपने शरीर और मन को स्वस्थ और सावधान रखने का प्रयत्न करना चाहिये। इसलिये तुम अपने शरीर को सुरक्षित रक्खो। कहा भी है कि शरीर की रक्षा सबसे पहला धर्म है। अगर शरीर ही रोग रहित नहीं होगा तो किसी भी वस्तु का कुछ भी आनन्द नहीं उठा सकोगे। इसलिये अपने समस्त शरीर को रोग-रहित रखने का दिन-रात यत्न करते रहो।

वेद की प्रार्थना कैसी सुन्दर है—"हे परमेश्वर !

मेरे सब अंग रोग रहित हों और मेरी शारीरिक शक्तियाँ वृद्धि को प्राप्त हों।" परन्तु हमारा कार्य कोरी प्रार्थना से सिद्ध नहीं हो सकता। अंगों को रोग-रहित रखने के लिये तथा शारीरिक शक्तियों के लिये हमें पूरी सावधानी से प्रयत्न करने की आवश्यकता है। प्रति दिन स्वास्थ्य के नियमों का पालन करो। तभी इस प्रार्थना की सिद्धि हो सकती है, अन्यथा नहीं।

*　　*　　*

तेरा भिखारी

(१)

महलों से लेकर छप्पर तक,
नीचे से लेकर ऊपर तक,
क्या फूलों में क्या कांटों में,
घोर तिमिर में क्या तारों में-
इस दुनिया में क्या है मेरा ?
सब कुछ तेरा, सब कुछ तेरा।
मैं हूँ एक भिखारी तेरा।

(२)

जो देता है ले लेता है,
और किसी को दे देता है।
सब कुछ वैसा ही रहता है,
नहीं ख़ज़ाना यह घटता है।
कहूँ किसे फिर यह है मेरा ? सब०

(३)

अपने सारे साथी संगी,
वसुधा जिनसे प्यारी लगती,
उनकी स्मृति भी मिट जाती है—
अन्त शून्य में मिल जाती है।
मोह-बंधे कह देते मेरा ? सब०

(४)

खाली आये खाली जाते,
जैसे ये वैसे हो जाते।
जब आते ऐसे ही जाते,
लेकर साथ न कुछ भी जाते।
क्या है मेरा ? क्या है तेरा ? सब०

* * *

बारहवाँ उपदेश

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।

'सब दिशाएँ मेरे लिये हितकारी हों ।'

बालको ! जब तुम्हारे शरीर के सब अंग स्वस्थ होंगे, जब कि तुम सब अंगों से ठीक-ठीक काम लोगे; जब तुम्हारा शरीर सुदृढ़ होगा, तब सचमुच सब दिशायें तुम्हारे लिये हितकारी होंगी ।

देखो, जिस राजा के सब मन्त्री अपने-अपने कार्य में कुशल होते हैं, जिसकी प्रजा सुखी और जिसके सेवक सन्तुष्ट रहते हैं, जिसकी सेना सुव्यवस्थित और अस्त्र-शस्त्र समयोपयोगी होते हैं, जिसके दुर्ग दृढ़ होते हैं, वह राजा निर्भय हो जाता है । उसे किसी दिशा से किसी प्रकार का भय नहीं रहता । दूसरे राजा भी उसका अच्छा प्रबन्ध देखकर उस पर आक्रमण करने का हौसला नहीं करते ।

यह तुम्हारा शरीर भी एक प्रकार की पुरी है, जिस पुरी में तुम्हारी आत्मा राजा के समान विराज-

मान है। अगर तुम्हारे शरीर का एक-एक अंग स्वस्थ हो, रोग-रहित हो, तब तुम्हारी आत्मा को सब प्रकार का सुख प्राप्त हो सकता है। कोई रोग तुमको सता नहीं सकता। तुम घर में रहो या बाहर जाओ, कोई प्राणी अशुभ दृष्टि से तुम्हारी ओर नहीं देख सकता। किसी को तुम्हारे साथ वैर नहीं हो सकता, क्योंकि तुम्हारे अपने दिल में किसी के प्रति वैर-भाव नही है।

याद रक्खो, जो स्वस्थ होता है वह गम्भीर भी होता है। वह सदा प्रसन्न चित्त रहता है। क्षुद्र बातों की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। वह ज़रा-ज़रा सी बात के ऊपर झगड़ा नहीं चाहता। इसलिये किसी दिशा में भी वह अपने प्रिय शत्रु नहीं देखता। उसे सब दिशाओं में सब प्राणी मित्र ही मित्र दिखाई देते हैं।

* * *

आगे-आगे

तुझे पथिक बनना होगा,
आगे-आगे चलना होगा।

(१)

अपना कौन ? कौन बेगाना ?
कहाँ ठहरना ! कहाँ ठिकाना ?
परिचय-हीन विश्व में तुझको, आगें-आगें चलना होगा।

(२)

साथी संगी इस दुनिया के,
वहीं छूटते जहाँ बनाये।
तोड़ जाल माया ममता के, आगें-आगें चलना होगा।

(३)

अपनी गठरी आप उठाकर,
कहीं नहीं टिकते जो पल भर।
उनकी तरह तुझे भी प्यारे, आगे-आगे चलना होगा।

(४)

भय क्या तब इकला जाने में,
जब न किया इकला आने में।
अब इक, सदभीलो अकेले, आगे-आगे चलना होगा।

तेरहवां उपदेश

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।

'मेरी माता भूमि है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ।'

(१)

बालको! देखो, वेद शिक्षा देता है कि जिस भूमि पर तुम दिन रात चलते फिरते रहते हो वह तुम्हारी माता है। यदि विचार कर देखो तो पता चलेगा कि जो कुछ हम खाते, पहनते या व्यवहार में लाते हैं, उन सबको देने वाली पृथिवी माता है। जहाँ तुम सुख से भवन बना कर रहतें हो, जहाँ तुम दिन रात कूदते फाँदते हो, जहाँ का जल पीते हो, अनाज और फल खाते हो, जहाँ के दृश्य देखकर तुम निहाल हो जाते हो, उसके साथ तुम्हारा प्रेम भी होना चाहिये।

बालको! तुमको चाहिये कि स्वदेश से प्रेम करो। अपने देशवासियों की भलाई के लिये उनकी बनाई वस्तुओं का प्रयोग करो। अगर अपने देश की वस्तु से प्रेम करोगे तो तुम्हारे देशवासी दिनों दिन उन्नति करेंगे। तुम देशवासियों की उन्नति को अपनी उन्नति समझो।

जिस आदमी के पास पड़ौस में रोने धोने के शब्द सुनाई देते हों, वह कभी सुख की नींद नहीं सो सकता। इसी प्रकार जिनके देशवासी भूखे मरेंगे उन्हें कभी सुख नहीं मिल सकता।

अपने देश प्रेम के साथ-साथ पृथ्वी पर जहाँ प्राणी दुःखी हों, जहाँ नर नारी किसी आपत्ति के कारण पीड़ित हों, वहाँ अपनी सहायता का हाथ अवश्य फैलाओ, क्योंकि पृथिवी तुम्हारी माता है। पृथिवी भर के पुत्रों को तुम अपना भाई मानकर उनके दुःख में उनकी हर प्रकार से सहायता करो।

"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"

(२)

देश प्रेम के सम्बन्ध में कुछ बातें तुमको सदा याद रखनी चाहियें। पहली बात यह है कि देश में रहने वाले सभी लोग—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, जैनी आदि सभी तुम्हारे भाई हैं। परस्पर के भेद भावों को अधिक महत्व न देकर उन सबके साथ तुम्हें भ्रातृ स्नेह दिखाना चाहिये। मत अथवा मज़हब को देश

प्रेम के सामने रुकावट न बनने देना चाहिये। दूसरे देशों में भी एक से अधिक मज़हब या मत पाये जाते हैं। पर वहां के लोग आपस में लड़ते झगड़ते नहीं, वह इस बात को अच्छी तरह समझते और मानते हैं कि "मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।"

दूसरी बात यह है कि हमारा देश प्रेम अन्धा प्रेम नहीं होना चाहिये। देश की जो अच्छी बातें हैं उन्हीं के साथ प्रेम दरसाओ। बुरी बातें अथवा कुरीतियों के साथ तुम्हें कदापि स्नेह न होना चाहिये, बल्कि उनको दूर करने के लिये सदा यत्न करते रहना चाहिये। देश की कुरीतियों को दूर करने के लिये यदि अपने देशवासियों से लड़ना भी पड़ जाय तो उससे घबराना नहीं चाहिये। सच्चा देश प्रेम यही है कि देश की उन्नति के लिये यदि हमें कष्ट भी सहने पड़ें तो हम उसके लिये सदा तैयार रहें।

* * *

भाई-बहन का प्रेम

किसी गाँव में एक ग़रीब ब्राह्मण रहता था। उस की चार वर्ष की एक कन्या थी, जिसका नाम यशोदा था। बारह वर्ष का उसका एक बालक था। जिसका नाम अभय था। अभय चञ्चल प्रकृति का खिलाड़ी लड़का था। पढ़ने-लिखने में भी तेज़ था।

एक रात्रि को जब ब्राह्मण अपने परिवार समेत अपनी झोंपड़ी में सो रहा था, एकाएक उस झोंपड़ी में आग लग गई। ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी एक दम जाग उठे। भयभीत होकर भाग निकले। कुछ मालमता उठायी, कुछ वहीं पर छोड़ दिया। उनका बालक अभय भी घर से बाहर निकल आया।

ब्राह्मणी कन्या को उठाना भूल गई। आग की लपटें उस कन्या के चारों ओर लपलपाने लगीं। हाहाकार मच गया। गाँव वाले इकट्ठे हो गये। किसी को हिम्मत न होती थी कि उस कन्या को जलती झोंपड़ी में घुस कर बचा लाता। ब्राह्मणी और ब्राह्मण हाय-हाय करते और हाथ मलते थे।

अभय को बहन से अगाध प्रेम था। उसको हमेशा अपनी गोद में उठाता और उसके साथ खेलता था। वह यह सहन न कर सकता था कि उसकी बहन देखते-देखते आग के अर्पण हो जाय। कपड़े उतार, कम्बल लपेट, तीर के समान छुट कर जलती झोंपड़ी में घुस गया। बहन को उंठा छाती से लगा, कम्बल में लपेट कर एक क्षण में बाहर आ गया। लोग देख कर चकित हो गये।

बहन बच गई। अभय का शरीर झुलस गया। पर उसने बहन-भाई का सच्चा प्रेम सब पर प्रकट कर दिया। कोई उसको गोदी लेता, कोई उसे कन्धे पर बिठाता, चारों ओर लोग ताली बजाते और 'वाह-वाह' कहते थे। अभय ने अपने धर्म का पालन किया, और वीरता का उदाहरण दिया।

* * *

मातृ-भक्ति

भारतवर्ष के बच्चों में अपने माता-पिता के प्रति कैसी भक्ति हुआ करती थी, इसके उदाहरण प्राचीन साहित्य में बहुत मिलते हैं। पर अब थोड़े समय की बात है कि भारत में एक भाग में अकाल पड़ गया था। अन्न मिलना कठिन हो गया। ग़रीब परिवारों में जान के लाले पड़ गये। भूख से लोग तड़पने लगें। उनके शरीर अस्थि पिंजर रह गये।

एक ग़रीब परिवार में एक माता और उसका बालक रहते थे। जैसे तैसे दिन काटते और अन्न की कमी के कारण प्रतिदिन अपना आहार कम करते जाते थे। एक दिन ऐसा आया जब उनके घर चुटकी भर चावल भी न बचे। बालक घबरा उठा और सोचने लगा अब बूढ़ी माता का निर्वाह कैसे होगा।

यह सोच कर वह घर से निकल पड़ा। माता की आँखों से आँसू फूट निकले। वह नहीं चाहती थी कि अपनी सन्तान को ऐसे विकट समय में अपनी आंखों से

ओझल करे। पर बालक ने कहा "माता! मैं शीघ्र तुम्हारे लिये अन्न का प्रबन्ध करके लौट आऊँगा। मैं तुमको भूखा नहीं देख सकता।"

बालक अपने गाँव से बहुत दूर चला गया। भूख प्यास से व्याकुल, थका माँदा एक झोंपड़ी की ओट में लेट गया। उस झोंपड़ी में एक बुढ़िया रहती थी। बालक की क्षीण अवस्था देख कर उसको दया आई। कुछ चावल पका लाई और उस बालक कों खानें को दिये। बालक ने चावल पाकर एक पोटली में बाँध लिये और तुरन्त पीछे लौट पड़ा। जब उसको भूखी माता की याद आती, तो उसकी थकी माँदी टाँगों में बल आ जाता और वह तेजी से चलने लग जाता। मार्ग में कभी-कभी जब उसे अपनी भूख पीड़ित करती, तो वह थोड़े से चावल अपने मुंह में डालने के लिये पोटली से निकालता, परन्तु तुरन्त ही उसे भूखी माता का स्मरण हो उठता और वह फिर उन चावलों को बिना मुंह में डाले पोटली में बाँध लेता।

आखिर भूख प्यास और थकान से वह चूर-चूर हो

गया। एक क़दम उठाना भी उसके लिये दूभर हो गया। निर्जन एकान्त स्थान में लेट गया, आँखें बन्द हो गईं। चाहता था आराम लेकर चल देगा। पर ऐसी नींद आई कि जिससे जगना न हो सका। रात गुज़र गई। सवेरा हो गया। बालक बेचारा चावलों की पोटली सीने पर धरे मृत्यु की नींद सोया था। स्वयं भूख की ज्वाला में जल गया। मातृ-स्नेह के वश में, माता की भूख मिटाने के लिये उसने अपने आपको बलिदान कर दिया, और मातृ-प्रेम के धर्म का पालन किया।

* * *

पञ्च महायज्ञ

यज्ञ शब्द भी ब्रह्मचर्य शब्द के समान गम्भीर अर्थ को प्रकट करता है। हमारे शास्त्रों में इसका बहुत प्रयोग हुआ है। साधारणतया हर एक परोपकार के कार्य को यज्ञ कह सकते हैं। जिस कार्य में स्वार्थ की मात्रा कम हो और परोपकार का भाव ज़्यादा हो उसको यज्ञ कहते हैं। स्वयं परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड को यज्ञ का रूप दिया है। समस्त भौतिक शक्तियां इस संसार में यज्ञ की आहुतियाँ हैं। देखो, सूर्य भगवान् अपनी किरणों द्वारा जीवन का संचार करता हुआ एक महान् यज्ञ की रचना कर रहा है। चन्द्र देवता अपनी शीतल ज्योत्स्ना द्वारा उस यज्ञ में भाग ले रहा है। हमारी मातृ-भूमि पृथ्वी अनेक प्रकार के धन धान्य से मनुष्य समाज को सुख प्रदान करती हुई इस यज्ञ की अधिष्ठात्री बन रही है। आओ, हम सब भी इनका अनुकरण करते हुए अपने जीवन को यज्ञ का रूप देवें। अनेक प्रकार के परोपकार के कार्य करते हुये मनुष्य मात्र तथा प्राणिमात्र के उपयोगी सिद्ध हों।

मानवी जीवन को परोपकारी बनाने के लिए हमारे शास्त्रों में पञ्च महायज्ञ करने का विधान बतलाया है। ये पंचयज्ञ सब मनुष्यों के लिये नित्यकर्म कहे गये हैं। इन यज्ञों का स्वरूप इस प्रकार है :—

१—ब्रह्मयज्ञ—वेद पाठ, जप और सन्ध्या करने को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं।

२—देवयज्ञ—अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधयज्ञ पर्यन्त कों देवयज्ञ कहते हैं।

३—पितृयज्ञ—जीवित माता पिता, दादा दादी, नाना नानी, गुरु आचार्य्य और अन्य बड़े बूढ़ों की सेवा करने को पितृयज्ञ कहते हैं।

४—अतिथियज्ञ—जिसके आने की कोई तिथि न हो ऐसा विद्वान ब्राह्मण संन्यासी महात्मा अपने यहाँ पर आ जावे तो उसकी सेवा को अतिथियज्ञ कहते हैं।

५—भूतयज्ञ—(बलिवैश्वदेवयज्ञ) प्राणिमात्र अथवा कुत्तों, कौवों आदि अन्य जानवरों को आहार देना भूतयज्ञ कहलाता है।

इन सब यज्ञों के करने से मनुष्य का हृदय विशाल हो जाता है और वह अपने आपको समाज का अंग मान कर दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति मानने लग जाता है। इस प्रकार समाज और उसके अन्तर्गत व्यक्ति, सभी सुख अनुभव करते हैं।

* * *

आर्य त्यौहार

हर एक सभ्य समाज अपने त्योहारों को मनाता है। उनके द्वारा अपने सभासदों में नवजीवन का संचार करता है। आर्यसमाज ने भी कई त्यौहार निश्चित किये हैं जिनका मनाना आर्यसमाजियों के लिये जरूरी समझा गया है। इन त्योहारों का विस्तृत विवरण "आर्य-पर्व पद्धति" नामी पुस्तक में मिलता है। मोटे मोटे त्योहार इस प्रकार हैं—

१—नव संवत्सरोत्सव—यह नवीन वर्ष का त्योहार चैत्र सुदी एक को मनाया जाता है। नूतन वर्ष के स्वागतार्थ आनन्दोत्सव मनाने की परिपाटी इस देश में चिरकाल से चली आई है।

२—आर्यसमाज का स्थापना दिवस—यह दिवस चैत्र सुदी पांच तदनुसार १० अप्रैल है। इस अवसर पर आर्य लोग देश देशान्तरों में वैदिक धर्म प्रचार के साधनों पर विचार तथा अपने अन्दर नये जीवन का संचार करते हैं।

३—रामनवमी—(श्रीराम जन्म दिन) चैत्र सुदी ६।

४—हरी तृतीया—(वर्षा ऋतु उत्सव) श्रावन सुदी ३ वर्षा ऋतु का शुभागमन उत्सव से मनाना प्रसन्नता का कारण बनता है।

५—श्रावणी—(श्रावण पूर्णमासी) इस उत्सव पर यज्ञोपवीत बदले जाते हैं।

६—श्रीकृष्ण जन्माष्मी—भाद्रपद बदी अष्टमी।

७—विजया दशमी—आश्विन सुदी दशमी।

८—श्रीमद्दयानन्द निर्वाणोत्सव—दीपावली कार्तिक अमावस्या। इसी दिन सायंकाल वि० सं० १६४० तदनुसार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० मंगलवार को आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की दिव्य आत्मा ने नश्वर शरीर को छोड़ा था।

६—माघ संक्रान्ति।

१०—वसन्त पंचमी—माघ सुदी पंचमी।

११—सीताष्टमी—जानकी जन्मदिन, फाल्गुण बदी अष्टमी।

१२—दयानन्द बोधोत्सव—शिवरात्रि ।

१३—वीरोत्सव—लेखराम बलिदान फाल्गुण सुदी तृतीया ।

१४—नव सस्येष्टि—होली, फाल्गुण पूर्णिमा ।

* * *

शुद्ध चैतन्य

सत्य की खोज

मूलजी सत्य की खोज में घर से निकले। सायले नामक एक ग्राम में पहुँचे। वहाँ वे एक ब्रह्मचारी से मिले। उसने उनको दीक्षा देकर गैरुआ वस्त्र पहनाया। हाथ में एक तुंबा देकर उनको शुद्धचैतन्य नाम दिया। वहां पर वे सन्तों की मंडली में रहने लगें, किन्तु उन्हें उनकी संगत में सन्तोष कहां ? वहाँ से वे कोट काँगड़ी नाम के एक छोटे से नगर में पहुँचे। थोड़ी दूर पर सिद्धपुर का मेला लगता था। उसमें अच्छे सन्यासियों का जमघट होता था। शुद्धचैतन्य को ख्याल आया कि शायद उनके पास पहुँच कर सत्य की प्राप्ति हो जाय। मार्ग में उनको एक पूर्व परिचित वैरागी मिला। उसनें चुपके से करसनजी के नाम एक चिट्ठी लिखकर मूल जी का वृत्तान्त लिख भेजा। पत्र पाते ही करसन जी सिपाहियों को साथ लेकर सिद्धपुर पहुँच गये। अचानक एक मन्दिर में मूल जी को गेरुए वस्त्र पहने बैठे देखकर

एक दम क्रुद्ध होकर डाँटने लगे। मूलजी ने दबक कर पितृ चरण पकड़ लिए और कहा—'मेरा अपराध क्षमा कीजिए, मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ।' पिता नें पुत्र के गेरुए कपड़े फाड़ डाले। शुद्ध चैतन्य से पुनः मूलजी बना डाला। सिपाहियों को आज्ञा हुई कि मूल जी की आँखों से ओझल न होने दें, पर मूलजी को तो सत्य की लौ लगी थी। सत्य की खोज उनका ध्येय बन चुका था। भागने का उपाय सोचने लगे।

पिता के बन्धन में तीन दिन व्यतीत हो गये। तीसरी रात के तीसरे पहर में पहरेदार सो गये। शुद्ध चैतन्य यह देख वहाँ से भाग निकले। मार्ग में एक पुराने मन्दिर के समीप एक वृक्ष की टहनियों में छिप कर बैठ गये। उधर सवेरा होने पर करसनजी के पास कुहराम मच गया। मूलजी नदारद थे, चारों ओर सवारों को दौड़ाया। उस मन्दिर में भी लोग पहुँचे, पर बहुत ढूंढने पर भी मूलजी का पता न चला। अन्धेरा हो जाने पर मूलजी वृक्ष के नीचे उतरे और आगें चल दिये। जिज्ञासु मूलजी अनेक गाँवों और

नगरों में घूमते हुए बड़ौदा के चैतन्य मठ में पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रहकर नर्मदा की ओर गये। सत्य की खोज में वे सफर की कठिनाई को कुछ न समझते थे। अनेक पण्डितों, ब्रह्मचारियों, साधुओं और सन्यासियों को मिलते मिलाते अन्त में उनकी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से भेंट हुई और उनसे सन्यास ग्रहण किया। सन्यासी होने पर उनका नाम 'दयानन्द-सरस्वती' रक्खा गया।

* * *

दयानन्द सरस्वती [१]

योगी की तलाश

संन्यास लेने के पश्चात् दयानन्द को योगी की तलाश हुई। सच्चे योगियों की तलाश में उनको दूर दूर चक्कर लगाने पड़े। कई स्थानों पर घूमते हुये वे आबू पर्वत पर पहुँचे। आबू से हरिद्वार गये। वहाँ कुछ समय रहकर हृषीकेश पहुँचे। इन सब स्थानों पर अनेक साधु महात्माओं से भेंट हुई। और उनसे उन्होंने योगाभ्यास सीखा। हृषीकेश से दयानन्द टेहरी गये और वहां से हिमालय पर्वत के कठिन जंगलों में घूमने लगे। यह सब कुछ उन्होंने गहन गम्भीर विचार के लिए किया। असह्य कष्टों को झेला और परिश्रम तथा तपस्या का जीवन व्यतीत किया। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक उनके मन का मनोरथ पूरा न हुआ, क्योंकि अधिकाँशतः उनको पाखण्डी सन्यासियों से ही पाला पड़ा।

घूमते हुए उनकी एक महन्त से भेंट हुई। वह

उन के चेहरे पर ब्रह्मचर्य के तेज को देखकर प्रभावित हुआ। दयानन्द को कहने लगा—'तुम मेरे शिष्य बन जाओ, महन्त कहलाओगे और एक बड़ी सम्पत्ति के मालिक बन कर सुख से जीवन बिताओगे।' दयानन्द यह सुनकर हंस पड़े और कहने लगे कि मेरे पिता के पास पर्याप्त सम्पत्ति थी। मैं उसे लात मार घर से निकल आया हूँ। मेरे हृदय में सच्ची सुख-सम्पत्ति की तलाश है, जो धन दौलत से नहीं मिल सकती। मैं तुम्हारी महन्ती को लेकर क्या करूंगा?

एक दिन बद्रीनारायण से चलकर वे अलखनन्दा नदी के किनारे पहुँचे। चारों ओर सिवाय पहाड़ों के कुछ न दीखता था। खाने पीने की कोई वस्तु न थी। पास ओढ़ने को कपड़ा न था। सर्दी भयानक थी। कई दिन तक उपवास करना पड़ा। बर्फ़ खाकर भूख मिटाई, परन्तु वहाँ पर भी कोई योगी न मिला। सब दुःख सहन किये, पर हृदय की व्यथा न मिटी। भटकते हुए नीचे रायकोट चले आये और वहाँ से घूमते हुए मुरादाबाद पहुँचे। फिर सच्चे गुरु की खोज

में नर्मदा के जंगलों में जा निकले। एक बार वे ऐसे जंगल में पहुँचे, जहां पैरों के चिन्ह भी नहीं दिखलाई देते थे। वहाँ से उनका बाहर निकलना भी कठिन था। सामने से एक काला रीछ वेग से दौड़ता चला आता था। मुंह फैला कर दयानन्द पर लपका। दयानन्द निडर थे। अपना सोटा संभाला और उस पर वार करने के लिए तैयार हो गये। रीछ डर कर भाग गया। दयानन्द आगे बढ़े और तीन वर्ष तक निरन्तर इन जंगलों में सच्चे गुरु की तलाश में घूमते रहे।

* * *

दयानन्द सरस्वती [२]

सच्चे गुरु की प्राप्ति

सम्वत् १९१७ में दयानन्द मथुरा पहुँचे। वहाँ पर प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द जी रहते थे। उनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। दयानन्द ने एक अटारीं पर चढ़कर दरवाज़ा खटखटाया। अन्दर से दण्डी विरजानन्द जी ने आवाज दी—"कौन है?" उत्तर मिला—"दयानन्द सरस्वती"। विरजानन्द ने पूछा—"तुम क्या चाहते हो?" उत्तर मिला—"भगवन्! विद्या तथा सत्य ज्ञान की पिपासा मुझे आप सरीखे सरोवर की ओर खींच लाई है।" दण्डी जी ने पूछा—"इससे पूर्व कुछ अध्ययन भी किया है?" दयानन्द ने उन तमाम ग्रन्थों की नामावलो कह सुनाई, जो वे उस समय तक पढ़ चुके थे। दण्डीजी ने दयानन्द को अपने पास बिठाकर कुछ प्रश्नादि पूछे। उत्तर मिलने पर वे समझ गये कि दयानन्द एक होनहार विद्यार्थी है। उसकी बातों से उसके उज्ज्वल भविष्य की झलक मिलती है। बोले—"दयानन्द! मैं तुम्हें

पढ़ाऊँगा। परन्तु शर्त यह है कि जो पुस्तकें तुमने पढ़ी हैं उन्हें जल प्रवाह कर दो। नये सिरे से पढ़ना आरम्भ करो।" दयानन्द ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

नियमों का पूर्ण पालन करते हुए, योग्यतम गुरु से दयानन्द ने थोड़े समय में बहुत कुछ अध्ययन कर लिया। वे एक आदर्श विद्यार्थी थे। गुरु की सेवा में कभी ढील न करते। प्रतिदिन दोनों समय, गर्मी, सर्दी आँधी, वर्षा कुछ हो, यमुना से पानी भर कर लाते, गुरु को नहलाते। कभी-कभी उनके पैर भी दबाते थे। उनकी सेवा उपचार तन देहो से करते। दण्डी जी उन के साथ असीम स्नेह रखते।

दयानन्द तीव्र बुद्धि के ब्रह्मचारी थे। वे एक श्रुतिधर थे। एक दिन अकस्मात् उन्हें अष्टाध्यायी की कोई बात याद न रही। पूछने पर गुरुजी ने दुबारा बताने से इन्कार किया। तब दयानन्द प्रण करके यमुना के किनारे पहुँचे। ध्यान में बैठ गये। या तो स्मरण करके उठूंगा या मरण को प्राप्त होऊँगा। अंत में अपनी बुद्धि के चमत्कार से उन्होंने उस बात को सिद्ध कर दिया। उस समय दयानन्द की आयु ३५ वर्ष की थी। पूर्ण ब्रह्मचर्य से उनका चेहरा दमक रहा

था। स्त्रियों की ओर वे कभी आँख उठाकर नहीं देखते थे, परंतु उनको मातावत् समझकर उनके सामने सिर झुका लेते थे।

दयानन्द की योग्यता और तर्कशैली पर दण्डी जी मोहित थे। वे कई बार गद्गद् होकर कहते—"मुझे दयानन्द पर अभिमान है।" इस प्रकार अपने गुरु का स्नेह भाजन बनकर दयानन्द ने २॥ वर्ष व्यतीत किये। वेद, व्याकरण, दर्शन तथा अन्य शास्त्रों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके देशाटन करने की इच्छा से दयानन्द गुरु विरजानन्द जी से विदाई माँगने गये। गुरु-दक्षिणा के रूप में दण्डी जी की प्रिय वस्तु लौंग एक थाल में अर्पित की, और कहने लगे—

"गुरुदेव, आपने मुझे विद्या का दान देकर मुझ पर असीम कृपा की है, यदि आपकी शुभ आज्ञा हो तो मैं विदाई लेकर देशाटन करूं और अपने अनुभव को बढ़ाऊं।" विरजानन्द का जी भर आया। आशीर्वाद देकर गुरु ने कहा—"बेटा, तुम्हारी विद्या सफल हो। गुरु-दक्षिणा में मैं लौंग नहीं चाहता। जो कुछ मैं

चाहता हूँ उसका देने का सामर्थ्य तुम्हीं में है। वत्स ! भारत में नाना मत-मतान्तरों के कारण कुरीतियाँ और अन्धकार फैला है। तुम उसे दूर करो। वेदों का पवित्र पाठ-पाठन लुप्त हो चुका है, तुम उसको पुनः रुज्जीवित करो। मेरे लिए यही गुरु-दक्षिणा होगी।"

गुरुदेव के वचनों को सुन कर दयानन्द बहुत आनन्दित हुए। विनम्र भाव से नत शिर होकर बोले—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मुझे आशीर्वाद दीजिए।" विरजानन्द ने बार-बार शिष्य के सिर पर हाथ फेर कर उसे उत्साहित किया। ईश्वर से प्रार्थना की कि वह दयानन्द की मनोकामना पूर्ण करे।

इस प्रकार गुरु शिष्य का एक दूसरे से वियोग हुआ।

* * *

वैदिक सुभाषित

१. आत्मना विन्दते वीर्यं,

विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।

आत्मा-ज्ञान से बल प्राप्त होता है तथा विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है ।

२. बहूनामेमि प्रथमो,

बहूनामेमि मध्यमः ।

अनेकों में मैं पहला बनूं या बीच का बनूं (निकृष्ठ कदापि न होऊं) ।

३. सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।

विद्या उत्साह-युक्त मनुष्य के पास जाती है ।

४. नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति

पसीना बहाये बिना धन नहीं मिलता ।

५. ओंक्रतो स्मर कृतं स्मर ।

हे प्रयत्नशील, परमेश्वर का स्मरण कर तथा अपने किये हुए कर्म का स्मरण कर ।

६. शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः

श्रमेण प्रपथे हताः ।

इस मनुष्य के सब दुःख परिश्रम करने के कारण मार्ग में ही मिट जाते हैं।

७. सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं
यो न तन्द्रयते चरन्।

सूर्य की शोभा को देखो जो चलता हुआ कभी नहीं सुस्ताता।

८. पापो नृपद्वरो जन,
इन्द्र इच्चरतः सखा।

आलसी मनुष्य ही पापी है। सचमुच प्रभु पुरुषार्थ करने वाले का मित्र होता है।

* *

आर्य समाज के निर्माता

बालको ! जिस घर में तुम रहते हो उसको बनाने में कई राज-मज़दूरों ने भाग लिया होगा । वही इसके बनाने वाले कहलाते हैं । इसी प्रकार आर्य-समाज रूपी संस्था को खड़ा करने के लिये अनेक महात्माओं ने अपना जीवन-काल लगाया । उन्हीं को आर्य-समाज के निर्माता कहते हैं । तुमको कम से कम उनका नाम तो अवश्य याद रखना चाहिये । यदि हो सके तो उनकी जीवन कथा पढ़ो । जिस प्रकार उन्होंने आर्य-समाज के कार्य को बढ़ाने तथा उसको पुष्ट करने में सहायता की थी, उसी प्रकार तुम भी करो ताकि उनके नाम के समान तुम्हारा नाम भी अमर हो जावे ।

आर्य-समाज की नींव डालने वाले तो स्वयं भगवान् दयानन्द थे, उनकी जीवनी तो तुमने अवश्य पढ़ी होगी । उन्होंने बम्बई में आर्य-समाज की नींव रक्खी और जीवन भर उसके बनाने और बढ़ाने में लगे रहे ।

भगवान् दयानन्द के पश्चात् दूसरे कई महात्माओं

ने भी आर्य समाज की सेवा में अपने जीवन अर्पण किए और उनके गौरव और यश को बढ़ाया। इस समय भी अनेक व्यक्ति आर्यसमाज की सेवा में लगे हुए हैं। यह सब उन्हीं की सेवाओं का फल है कि आर्य समाज का नाम भारतवर्ष में और भारतवर्ष के बाहर भी फैल रहा है।

हम कतिपय उन महात्माओं के नाम नीचे लिखते हैं जिन्होंने भगवान् दयानन्द के पीछे आर्य समाज रूपी भवन को बनाने में अपना जीवन लगाया और आर्य समाज के निर्माता कहलाये।

पण्डित गुरुदत्त, पण्डित लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी नित्यानन्द, महात्मा भगवानदीन, पण्डित तुलसी राम, पण्डित गणपति शर्मा, डा० चिरञ्जीव भारद्वाज, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, डाक्टर केशवदेव, पण्डित चमूपति जी, पण्डित आत्माराम अमृतसरी, महात्मा हंसराज, आचार्य रामदेव जी।

इनके अतिरिक्त कई और भी महापुरुष हो चुके हैं जिन्होंने आर्य समाज के लिये अपना सर्वस्व अर्पण किया। ये सब हमारे लिए प्रातः स्मरणीय और अनुकरणीय है।

आर्य बालक

बालको ! तुम आर्य बालक कहलाते हो । क्या तुम जानते हो आर्य बालक के क्या चिन्ह हैं ? वह कैसे पहचाना जाता है ? हम तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर देना चाहते हैं । जब तुम यह बात जान लोगे कि आर्य बालक कैसे होते हैं तब तुम सच्चे आर्य बालक बनने की कोशिश करोगे ।

आर्य बालक की पहली पहचान यह है कि वह अपने घर में, अपने भाई बहनों के बीच में रहता हुआ किसी को अपने व्यवहार से दुःखी नहीं बनाता । वह अपने माता-पिता तथा अन्य अपने से बड़े व्यक्तियों की उचित तथा धर्मानुसार आज्ञाओं का सदा पालन करता है, दूसरों के कष्टों को दूर करने का उसे सदा ध्यान रहता है । जब वह पाठशाला को जाता है या वहाँ से लौटकर आता है, तब वह अपने माता-पिता को प्रणाम कहकर उनके हृदय की प्रसन्नता को बढ़ाता है और अपने लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त करता है ।

आर्य बालक कीं दूसरी पहचान यह है कि वह अपने अध्यापकों तथा गुरुजनों को विद्या-प्रेम तथा स्वाध्याय के अनुराग से सदा प्रसन्न रखता है। समय पर पाठशाला में पहुँच जाता है और अपने पाठ में नाग़ा नहीं आने देता। प्रतिदिन का कार्य उसी दिन समाप्त करता है। वर्ष की समाप्ति पर, परीक्षाफल निकट आने पर, दिन रात पढ़ाई में व्यस्त रहकर वह अपने बहुमूल्य स्वास्थ्य को नहीं खोता।

आर्य बालक की तीसरी पहचान यह है कि वह अपने स्वभाव को ऐसा मीठा और मृदु बनाता है कि सभी लोग उसके व्यवहार का प्रभाव मानते हैं। पाठशाला में सभी उसको शिष्ट बालक कहते हैं। आर्य और सज्जन इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ माना जाता है। आर्य बालक ही वस्तुतः सज्जन कहलाता है।

आर्य बालक स्वतन्त्रता-प्रिय होता है, परन्तु वह स्वतन्त्रता का अर्थ 'मनमानी करना' नहीं लेता। कर्त्तव्य के पालन करने तथा उसे बिना रोक-टोक पालन करने को ही वह स्वतंत्रता समझता है। जो उचित कार्य होते हैं, उन्हें ही वह करता है, अनुचित

कार्यों से वह दूर रहता है।

आर्य-बालक एक विशाल हृदय का मालिक होता है। तंगदिली तो उसके नज़दीक नहीं फटकती। वह दूसरों के प्रति तुच्छ या क्षुद्र चिन्तन नहीं करता। सभी के सम्बन्ध में ऊंचे विचार रखता है। उदारता उसके स्वभाव में रहती है और उत्तमता उसके आचरण में।

आर्य-बालक व्यायाम द्वारा अपने शरीर को, स्वाध्याय द्वारा अपने मन को तथा अपने शुद्धाचरण द्वारा अपनी आत्मा को उनत करता है। शरीर, मन और आत्मा तीनों की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। उसके शरीर में बल रहता है, उसके मन में शिव-संकल्प रहता है और उसकी आत्मा में महत्वा-कांक्षा (आगे बढ़ने की चाह) रहती है।

आर्य-बालक मुसीबतों के आने पर घबराता नहीं, छाती तानकर खड़ा हो जाता है और मरदों के समान उनका मुकाबला करता है। खुशी के अवसर पर वह आपे से बाहर नहीं होता। दुःख सुख में समान रूप रह कर अपने आर्यत्व को बनाये रखता है।

* * *